(सम्यग्दर्शन के) आठ गुण अथवा आठ लक्षण की व्याख्या चलती है। सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म की पहली शुरुआत। धर्म की शुरुआत अर्थात् यह आत्मा अनन्त शुद्ध आनन्द गुण का पिण्ड है, उसकी अन्तर्मुख होकर विकल्प अर्थात् राग के अवलम्बन बिना, स्वभाव के अवलम्बन से अनुभव होकर प्रतीति हुई, इसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी और यह धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। तब तक अज्ञान जहाँ है, राग

पुण्य-पाप के भाव, उनके फल ये संयोग, इनकी जब तक इसे रुचि है, उसे आनन्दस्वरूप आत्मा की रुचि और दृष्टि नहीं है, तब तक मिथ्यादृष्टि दुःख की दृष्टि है और दुःख सागर में डूबना चाहता है। समझ में आया?

यह सम्यग्दृष्टि की निःशंकता की बात आ गयी। आज निःकांक्ष (अंग) है। धर्मी जीव, जिसे आत्मा के पवित्र अनन्त स्वभाव की जहाँ ज्ञान होकर प्रतीति वर्तती है, उसे आत्मा के अतिरिक्त राग और राग का फल, इनकी उसे वांछा नहीं होती। समझ में आया? उसे भगवान धर्म कहते हैं। देखो!

कांक्षा अर्थात् भोगों की इच्छा-अभिलाषा है। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में अभिलाषा है कि उसमें ठीक है, सुखबुद्धि है, वह कांक्षा अर्थात् मिथ्यात्व के निमित्त से मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया? भोग की इच्छा। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है, उसे अनुभव करने की भावना नहीं और पाँच इन्द्रिय के विषयों में प्रेम वर्तता है, काँक्षा-इच्छा वर्तती है, उसे यहाँ काँक्षा अर्थात् मिथ्यादृष्टि का लक्षण कहते हैं। समझ में आया?

काँक्षा अर्थात् भोग की इच्छा। सम्यग्दृष्टि को भोग की इच्छा नहीं होती। समझ में आया? धर्मी जीव को सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह आत्मा आनन्दमूर्ति देखा, कहा—ऐसी दृष्टि धर्मी की हो गयी है; इसलिए अपने आनन्द की भावना के अतिरिक्त किसी भी इन्द्र के, इन्द्रिय के, इन्द्र और इन्द्रिय के भोग में उसकी रुचि नहीं होती। समझ में आया? देवचन्दजी! आहाहा!

काँक्षा अर्थात् भोगों की इच्छा-अभिलाषा। वहाँ पूर्वकाल में किये भोगों की वांछा... पूर्व में जो भोग किये हों, पाँच इन्द्रिय के विषय के, वे ठीक हैं-ऐसी उनकी वांछा रहे, उसे आत्मा के ज्ञानानन्द की प्रतीति और रुचि नहीं है। उसे धर्म की रुचि नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है, उसका जिसे प्रेम से रुचि और दृष्टि वर्तती है, उसे भोग की इच्छा नहीं होती। पण्डितजी! आहाहा! गजब! पूर्व में भोग किये हैं, उनकी वांछा नहीं होती। सम्यग्दर्शन—आत्मा का भान हुआ है, इससे पूर्व में कोई मिथ्यात्व में भोग की वांछा आदि हुए हों, उनकी उसे इच्छा नहीं होती। जहर है, विषय के सुख तो जहर है। समझ में आया? धर्म की दृष्टिवन्त को

विषय के सुख में जो कल्पना है, उसमें सुखबुद्धि नहीं होती। अज्ञानी को उसमें सुखबुद्धि से पूर्व के भोगे हुए को भी स्मरण-याद करता है (कि) आहाहा! गजब! इन्द्राणियाँ थीं, देवियाँ थीं, अप्सरा जैसी स्त्री रूपवान सुन्दर थी, उनके साथ भोग किया था। आहाहा! मूढ़ जीव को अज्ञानभाव में ऐसे पूर्व के भोगे हुए सुख की वृद्धि की वांछा रहे कि ठीक था, वह मिथ्यादृष्टि का कर्तव्य है। आहाहा!

तथा उन भोगों की मुख्य क्रिया में वांछा... (अर्थात्) यह शरीर की क्रिया। हुई हो न इन्द्रियों से, उसकी वांछा उड़ जाती है, उस अजीव की क्रिया की वांछा और भोग में वांछा सुखपना जो पूर्व में कल्पित किया था, उसकी वांछा, दोनों अज्ञानभाव हैं। समझ में आया? उसे भगवान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। उसे धर्म नहीं होता। धर्मी को अपना आत्मा शुद्ध पवित्र और आनन्द का महाधाम / खान है - ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई है। उस आनन्द के समक्ष दूसरे कोई भी पूर्व में भोग भोगे या वर्तमान उसकी क्रिया देह की हुई, उसकी उसे इच्छा नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

तथा कर्म और कर्म के फल की वांछा... नहीं होती। कर्म बँधा, वह ठीक अथवा मुझे शुभभाव हुए, वे ठीक और उनके फलरूप से पुण्य बँधेगा, उसके फलरूप से संयोग मिलेंगे, ऐसी जो वांछा, वह मिथ्यादृष्टि की वांछा है; धर्मी को वह नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं **तथा मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर उन्हें अपने मन में भला जानना...** अज्ञानी जीव हैं, उन्हें करोड़ों-अरबों रुपयों की सामग्री और बाह्य वैभव दिखायी दे, मोटरों में घुमते (हों)। तब मोटरें कहाँ थीं, परन्तु यह तो अभी हो गयी न अब। तब घोड़ागाड़ी में और हाथी, हाथी पर घूमते देखे। आहाहा! बहुत सुखी है। इस प्रकार जिसके हृदय में ऐसे अज्ञानियों के सुख की सामग्री और उसकी कल्पना को भली माने, वह मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। उसे जैनपने की खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर... ओहो.. (उसे) दिन की लाखों रुपयों की आमदनी है न, बहुत सुखी है - ऐसा जो मूढ़ मानता है, वह स्वयं मूढ़ है। समझ में आया? उसे धर्म की दृष्टि और रुचि नहीं है। **उन्हें अपने मन में भला जानना...** मन में प्रसन्न हो कि आहाहा! परन्तु उसे क्या साहिबी! पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान लड़के,

२२, २४, २६, २८, ३०, ३२ ऐसे नम्बरवाले। नम्बरवाले अर्थात् वे क्या कहलाते हैं? आयुष्यवाले। आहाहा! ठीक है परन्तु यह। धूल भी ठीक नहीं, सुन न! यह तो जहर का पेय पीता है। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी जीव तो उसे कहते हैं कि जो ऐसे मिथ्यादृष्टि के भोग की प्राप्ति को भी नहीं मानता, भला नहीं जानता। उसमें भलापना है भी कहाँ? समझ में आया? **अथवा जो इन्द्रियों को न रुचे, ऐसे विषयों में उद्वेग होना...** यह लक्षण बताया। देखो! पहला राग का (था), अब द्वेष का (कहते हैं)। प्रतिकूलता, जो इन्द्रियों को ठीक नहीं लगते, ऐसे सोने-बैठने के साधन, खाने-पीने के साधन, ऐसी प्रतिकूलता के प्रति जिसे द्वेष है, रुचता नहीं, उसे इन्द्रिय के विषय रुचते हैं। कहो, सुजानमलजी!

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म नहीं, यह वस्तु ही ऐसी है। सूक्ष्म वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। भाई! यहाँ तो आत्मा धर्मी हुआ, उसका क्या स्वरूप है, यह वर्णन करते हैं। उससे अधर्मी का स्वरूप ऐसा होता है, यह वर्णन करते हैं। ऐसी बात है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में आया कि इस प्रकार जो है, वांछावाला जीव है, पर में सुखबुद्धि (रखनेवाला) मिथ्यादृष्टि है, वह धर्मी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इन्द्रियों के नहीं रुचे ऐसे (विषय)। ऐसे अग्नि छुए तो ठीक न लगे। इसका अर्थ कि विषय की अनुकूल सामग्री मिले, स्पर्श करे तो ठीक लगता है, ऐसा है। जितना प्रतिकूलता में द्वेष है, उतना अनुकूलता में उसे राग है। आहाहा! ऐ... मगनभाई! भारी कठिन ऐसा काम। यह पंचाध्यायी में से। वह पंचाध्यायी में से लिया है। वह गाथा नहीं थी? सवेरे। ४९५वीं गाथा है। पर्यायबुद्धि। पर में आत्मबुद्धि। ...इन्होंने अर्थ किया है, वह बराबर लगा।.... आहाहा!

धर्मी जीव अपना भगवान आत्मा, जिसकी दशा में पंच परमेष्ठी बसते हैं, जिसकी शक्ति में परमात्मा बसते हैं, ऐसा आत्मा जिसने अन्तर्दृष्टि में धर्मी को सम्यग्दृष्टि में जँचा, उसे निःशंकपने आत्मा में वर्तता है और जिसे वह निःशंकता नहीं है और जिसे शंका है अर्थात् कि आत्मा के स्वभाव पर दृष्टि नहीं है और राग तथा शरीर को जो अपना मानता है, उसे शंका है। अर्थात् मिथ्यात्वभाव है। शरीर और राग को अपना मानकर पर-पर्याय

में इसकी अपनी दृष्टि होती है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस अर्थ किया है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है।

यहाँ ऐसा कहा कि ये शब्द प्रतिकूल गाली आदि पड़े और इसे न रुचे तो समझना कि इसे इसकी प्रशंसा रुचती है। देवचन्दजी! बराबर है? पण्डितजी! जिसे आँख का कुरूप देखना नहीं रुचता, उसे सुरूप का विषय रुचता है। जिसे कुगन्ध-दुर्गन्ध नाक में नहीं रुचती, उसे सुगन्ध रुचती है। जितनी परपदार्थ में प्रतिकूलता नहीं सुहाती, उसका (अर्थ कि) उसे अनुकूलता सुहाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे रस, कड़वा जहर जैसा रस अन्दर जीभ में स्पर्श करे, उतना ही इसे अनुकूल गन्ने का और आम का रस होता है, वह रुचता है, इसलिए इसे विषय की रुचि है। यह आम का समय है न, अब थोड़े दिन बाद। बढ़िया आम हों ऐसे फर्स्ट क्लास रस (हो)। आहाहा! और घी में तली हुई पूड़ी हो, अरबी के भुजिया हों। कहते हैं जिसे ऐसा जहर आवे और वह न रुचे, उसी प्रकार यह सब रुचता है, इसकी उसे वांछा है। बराबर है? इसी प्रकार स्पर्श में। अग्नि और बिच्छू प्रतिकूलता (देवे, उसकी) अरुचि है, रुचि नहीं, उसे का अभाव और अनुकूलता के विषय रुचते हैं। ललितभाई! कहो, यह समझ में आता है या नहीं? ऐसी बात है।

इन्द्रियों को न रुचे, ऐसे विषयों में उद्वेग होना... पाँच इन्द्रियाँ, यह मिट्टी, जड़ और खण्ड-खण्ड अन्दर, उसे न सुहावे ऐसे विषयों (के प्रति) उद्वेग होना। लकड़ी पड़े, सिर पर छुरी पड़े और न सुहावे तो इसका अर्थ कि उसे अनुकूलता मक्खन लगावे तो सुहाता है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! वीतराग के मार्ग को समझना अभी इसे महा कठिन पड़ता है, यह रुचि करके परिणमावे कब? समझ में आया?

तब कोई कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि तो विवाह करता है न? तीर्थंकर जैसे छियानवें हजार स्त्रियों से विवाह किया, तीन ज्ञान के धनी थे, क्षायिक समकित था। क्या उन्हें अभिलाषा नहीं होगी? यहाँ तो इसकी वांछा को तो मिथ्यात्वभाव कहा। वह वांछा की वांछा है ही नहीं। इच्छा की इच्छा ज्ञानी को नहीं (होती)। आहाहा! इच्छा को जहररूप से देखते हैं। समझ में आया? उसे ज्ञेयरूप से ज्ञान में जानते हैं। उसमें मुझे ठीक लगेगा, ऐसी भावना समकिती को ऐसी इच्छा नहीं होती। आहाहा! अरे! गजब बात, भाई! विवाह करे और ठीक लगेगा, ऐसा नहीं मानते, यह कहते हैं। समझ में आया या नहीं? स्त्रियाँ

होंगी तो विषय होगा। ऐसे खाने-पीने के साधन बनेंगे, ऐसी इच्छा समकिती को नहीं होती। आहाहा! क्योंकि बाह्य साधन और बाह्य साधन के प्रति होनेवाला राग, दोनों विभाव और विभाव की क्रिया, उसे कुछ ठीक माने तो आत्मा का स्वभाव ठीक है, ऐसा उसे रुचा नहीं है। वजुभाई! आहाहा!

यह कहते हैं, बापू! सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या चीज़? और मिथ्यादर्शन अर्थात् उसके क्या दोष? सम्यग्दर्शन में क्या गुण? और मिथ्यादर्शन में क्या दोष?—इसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा! इन्द्रिय के नहीं रुचे, ऐसे विषयों में द्वेष होना। उद्वेग अर्थात् (द्वेष)। इसका अर्थ कि इसके विरुद्ध की अनुकूलता उसे रुचती है। समझ में आया? आहाहा! गजब काम है। वीतराग की शैली तो देखो! इसे बिच्छु काटे वह न रुचे, उद्वेग हो तो उसके बदले विषय की अनुकूलता कोई दे, मक्खन चोपड़े, वह ठीक लगता है। यह तो विषय की इच्छा हो गयी। देवचन्दजी! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व होगा? आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की धर्म की स्थिति तो यह है। लोग अपनी कल्पना से मान बैठें, वह कहीं वीतराग के मार्ग का तत्त्व नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्म के उदय से होता है... रचा कैसा है! यह प्रकार जो कहे, ऐसी जो अभिलाषा मिथ्यात्व के कर्म के निमित्त से अपने में होती है। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्वकर्म का उदय अर्थात्? वह तो निमित्त है परन्तु यहाँ मिथ्यात्वभाव होता है, वह कर्म का निमित्त है, उसके लक्ष्य से यह होता है। उसे आत्मा का लक्ष्य नहीं है। अरे! ऐसा मार्ग अभी समझना चाहे नहीं और सुनने को मिले नहीं, वह रुचे कब? आहाहा! जन्म-मरण के अन्त कब आवे उसे? समझ में आया? **और जिसके यह न हो,...** लो, यह जिसके न हो, **वह निःकांक्षित अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है।** समझ में आया?

वह सम्यग्दृष्टि यद्यपि शुभक्रिया-व्रतादिक आचरण करता है... अब आया कि शुभभाव की भी वांछा नहीं तो व्रतादि की क्रिया में शुभभाव होता है, वह तो करता है। यह बात ली है, देखा? अशुभ का नहीं लिया। शुभक्रिया व्रत आदि, भक्ति आदि, पूजा आदि में शुभभाव है, ऐसा तो आचरण समकिती को (होता है), शुभभाव आता है **और**

उसका फल शुभकर्मबन्ध है,... व्रत का भाव, अहिंसा का, सत्य, अचौर्य का, सत् का भाव, भगवान का नाम स्मरण करना इत्यादि, अपवास का भाव इत्यादि। शुभभाव और उस शुभभाव का फल तो पुण्यबन्ध है। समझ में आया? **किन्तु उसकी वह वांछा नहीं करता।** उसकी धर्मी वांछा नहीं करता। आहाहा! गजब बात, भाई! यह व्रत का भाव हो, तथापि चाहता नहीं और व्रत के फलरूप से पुण्य बँधे, हो, उसकी भी उसे वांछा नहीं है। इसका नाम भगवान ने सम्यग्दृष्टि का धर्म कहा है। स्वरूप वह यह है। वापस भाषा देखो!

व्रतादिक को स्वरूप का साधक जानकर उनका आचरण करता है... ऐसा निमित्तपना पाँचवें या छठे गुणस्थान में राग की मन्दता का भाव निमित्तरूप से, व्यवहार साधकरूप से कहने में आता है। वास्तव में साधक नहीं है, उसकी वांछा नहीं है। वह साधन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? व्रतादिक, भक्ति आदि के परिणाम को स्वरूप के साधक अर्थात् व्यवहार निमित्तरूप से जानकर उनका आचरण करता है। आचरण करता है अर्थात् होते हैं। व्यवहार से आचरण करता है, ऐसा कहने में आता है।

कर्म के फल की वांछा नहीं करता... परन्तु उसका फल मुझे प्राप्त हो, पुण्यबन्ध हो, उसका संयोग (मिले), ऐसी वांछा धर्मी को नहीं होती। यह निःकांक्षित अंग कहा, लो! दूसरा बोल हुआ। सम्यग्दृष्टि का दूसरा (बोल)। जिस प्रकार सूर्य की हजार किरणें जैसी हों, वैसे सम्यग्दर्शन की यह दूसरी किरण है। आठ किरणों में से दूसरी किरण है। लक्षण कहो, आचरण कहो, चिह्न कहो, उस प्रकार का उस पर्याय का गुण कहो। यह सम्यग्दर्शन का निःकांक्ष (गुण है)। आहाहा!

धर्मी तो राग की वांछा से मर गये होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जैसे आयुष्य पूर्ण हो और देह छूट जाती है; उसी प्रकार जिसकी राग की वांछा मर गयी है। वह यह बात! वह इच्छा होने पर भी मर गयी है, कहते हैं। उसकी रुचि नहीं होती। आहाहा! जिसे राग की रुचि है, उसे रागरहित भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की रुचि नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, जिसे अपनी निन्दा सुनना नहीं सुहाती, उसे उसकी प्रशंसा अन्दर सुहाती है। गजब बात है! हैं? भगवान आत्मा ज्ञाता—दृष्टा आनन्दस्वरूप है, उसकी जिसे रुचि और दृष्टि का अनुभव हुआ, वह निन्दा और प्रशंसा दोनों ज्ञातारूप से, ज्ञेयरूप से जानता है। समझ में आया? अज्ञानी को तो वह निन्दा नहीं सुहाती, उसका

हीनपना यदि कहो तो नहीं सुहाता। इसका अर्थ की उसका अधिकपना और प्रशंसा करे तो उसे सुहाता है। समझ में आया? यह मिथ्यात्व का लक्षण है। यह सम्यग्दृष्टि का लक्षण नहीं है। आहाहा! गजब! यह नि:काँक्ष अंग की दूसरी व्याख्या हुई। दूसरे अंग की हुई। पहली नि:शंक की कही थी, दूसरी नि:काँक्ष की कही। अब तीसरा गुण। सम्यग्दृष्टि-धर्मी को चौथे गुणस्थान में (यह गुण) है, हों! श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान। परन्तु वह तो ऐसा हो, पश्चात् उसकी ऊँची दशा होती है। ये बाड़ा के श्रावक, वे कोई श्रावक नहीं हैं। यह तो थैली में कड़वा चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर, यह तो ऐसा है। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई!

अब तीसरा बोल, निर्विचिकित्सा। सम्यग्दृष्टि का ग्लानिरहित का एक तीसरा गुण है, उसकी विरुद्धता का विचिकित्सा है। **अपने में अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानकर..** आहाहा! कुछ शरीर सुन्दर हो, कण्ठ में कुछ जरा बारीक और ऊँचा हो, तार जैसा बजता हो, घण्टी जैसा, शरीर की कोमलता हो, बाहर की सामग्री, नौकर-चाकर आदि सब ठीक हों, उसके कारण **अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानकर पर में हीनता की बुद्धि हो,...** यह क्या बेचारा पामर प्राणी। जिसे इज्जत भी नहीं, जिसे बुद्धि भी नहीं, जिसे हाम, दाम और ठाम भी नहीं। आहाहा! इस प्रकार जो अज्ञानी अपनी अधिकता देखकर, दूसरे की हीनता देखकर द्वेष करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। बराबर है?

अपने में अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से... अन्दर में यदि गुण सच्चा होवे तो... यह तो एक बाहर की सामग्री आदि पुण्य के फल में **अपने को श्रेष्ठ मानकर पर में हीनता की बुद्धि हो,...** क्या यह पामर प्राणी बेचारे। बोलना भी नहीं आता, खाना-पीना भी नहीं आता, खाने-पीने के साधन भी बेचारे को नहीं है। इस प्रकार दूसरे को ऐसी हीनतावाले को हीनबुद्धि से देखे और अपनी अधिकबुद्धि से अपने को देखे। पुण्य की सामग्री और यह। मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो सब कर्म की सामग्री है। इसमें महत्ता कहाँ आयी? और इसमें हीनता कहाँ आयी? कर्म की सामग्री हीन आयी, उसमें दोष कहाँ आया? समझ में आया? बाहर की सामग्री अनुकूल (होवे), उसमें गुण कहाँ आया? और प्रतिकूल होवे, उसमें दोष कहाँ आया? समझ में आया? **वह जिसके**

न हो, सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है। ऐसी बुद्धि न हो, उसे निर्विचिकित्सा—ग्लानिरहितता का समभाव सम्यग्दृष्टि को होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है। ...ठीक कहते हैं। ...समकित का अंग है न। यह होवे तो कहा है न? भाई! ...मोक्षमार्गप्रकाशक में अन्त में... है न? ऐसा होता ही है। ...अन्तर पड़े तो वस्तु कहाँ रही? पुण्य-पाप के भाव, जो बाह्य कर्म की सामग्री है, इससे वह हीन है और कर्म की सामग्री मुझे अनुकूल है, इसलिए अधिक है, वह तो जड़ की बुद्धि है। जड़ से अधिक हूँ, ऐसा माना और जड़ से हीन हूँ, ऐसा माना। ऐई!

बन्दर के आठ अंग की वार्ता नहीं थी? ....मनुष्य के अंग जैसे बन्दर के अंग नहीं होते, ऐसी बात है। ऐसा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में अन्त में... अन्त में (आता है)। यहाँ तो यह तो हो ही नहीं। यह तो मूल में जाता है, यह तो कोई सहज प्रभावना आदि में मन्दता से दिखता है तो भी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि नहीं जाती, ऐसा। समझ में आया? वह आवे तब बात।

मुमुक्षु : होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है। आहाहा! क्योंकि पहले में नि:शंकता अखण्डता बतायी। दूसरे में पर की इच्छारहित भाव, पर की इच्छा न हो, यह बतलाया और तीसरे में पर की द्वेषता न हो, ऐसा बतलाया। दूसरे में पर में राग न हो, यह बतलाया; तीसरे में पर में द्वेष न हो, यह बतलाया। वस्तु की स्थिति ऐसी है, वैसी वर्णन की है। समझ में आया?

उसके चिह्न ऐसे हैं कि यदि कोई पुरुष पाप के उदय से दु:खी हो,... अब स्पष्टीकरण करते हैं। पूर्व के पाप के कारण प्रतिकूलता हो। पाँच रुपये का वेतन भी न मिलता हो। शरीर भी काला हो, बोलते हुए भी ऐं... ऐं... कौवे जैसी भाषा हो, दु:खी हो। **असाता के उदय से ग्लानियुक्त शरीर हो...** शरीर में रोग व्याप्त हो। जलन्धर। ऐसा करके भी अहं करता हो... यह तो बाहर की सामग्री है। पूरे वेग से चले, ऐसी सामग्री का जिसे अभिमान है और उसकी सामग्री का अभाव (होवे), उसकी जिसे ग्लानि है, यह समकिती का लक्षण नहीं है। समझ में आया? ग्लानियुक्त शरीर हो। समझ में आया? ऐसा शरीर (होवे) कि रोग से (ग्रसित हो) साथ में नरक के नारकी का कैसा शरीर है? दस

लोग आकर न देखे-नहीं। नारकी, नारकी देखे। समकिती जो नारकी है, उसे तो सबको बाहर में समान है। समझ में आया?

ऐसी कर्म के निमित्त की सामग्री की हीनता है, उसमें आत्मा की हीनता क्या आयी? आत्मा में क्या न्यूनता आयी? बाहर की सामग्री की हीनता से आत्मा की हीनता क्या आयी? बाहर की सामग्री की हीनता से आत्मा को हीन माने, वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, उसकी विपरीत सलाह मानना दोष है, ऐसा कहते हैं। उस समकिती को जुगुप्सा ऐसा भाव नहीं होता। आहाहा! गजब!

असाता के उदय से ग्लानियुक्त शरीर हो... शरीर ऐसा हो, काला-कुबड़ा हो, शीतला निकली हो तो ऐसा हो। नाक ऐसा हो, कान-बान सब टूटे-फूटे हों। समझ में आया? कहते हैं, **उसमें ग्लानिबुद्धि नहीं करता। ऐसी बुद्धि नहीं करता कि मैं सम्पदावान हूँ,...** देखो! आहाहा! मुझे तो पाँच इन्द्रिय और शरीर तथा सामग्री कैसी! हुकम करे, वहाँ हाजिर मनुष्य (नौकर आदि)। इस बेचारे को उं... उं ... किया करे, पानी पीना है, पानी पीना है तो भी कोई सुनता नहीं। ...यह तो बाहर की सामग्री है, उसके कारण से क्या है? आत्मजन्य जो सम्पदा है, उसके अतिरिक्त कर्म की सम्पदा से जो कुछ अन्तर और बाह्य सामग्री आती है, उससे दूसरे को हीन मानना, यह बात सत्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। सेठी! यह तो समझ में आये ऐसा है। देखो! क्या कहते हैं?

ऐसी बुद्धि नहीं करता कि मैं सम्पदावान हूँ,... पाँच-पाँच, दस-दस करोड़ रुपये मेरे पास हैं और पाँच-पाँच लाख की आमदनी, दस-दस लाख की तो आमदनी है। परन्तु अब क्या है उसमें? परन्तु उस धूल में तुझे क्या आया? समझ में आया? हम तो शेयर बाजार में जाएँ तो पाँच हजार एक-एक दिन में कमा आते हैं। तुम्हारा दम है यह? ऐई! सट्टा... सट्टा...। तुम्हारे नहीं था? लक्ष्मीचन्दभाई ने किया था। (संवत्) १९९० में, मुम्बई। वहाँ बैठे थे। जा! ऐसा किया वहाँ तीन हजार कमाये, तीन हजार या ऐसा कुछ था। ऐसा सुना था। जाओ! तीन हजार, लो! आहाहा! लक्ष्मीचन्द पीताम्बर था। वहाँ बैठा था। मुझे तो जाना था मुम्बई। वह भी अभिमान (करे कि) यह भाव करना। वहाँ जाकर इस भाई ने किया तो तीन हजार की कमाई हुई। तीन हजार क्या, तीन लाख कमाये। ऐई! यह जयन्तीभाई के भानेज हैं, कोई कामदार। दस रुपये भरे हैं, साढ़े बारह लाख आये, लॉटरी

में। ऐसे के ऐसे। दो महीने पहले। उसने कहा, अपने को कहाँ खबर होती है ? कहे, उसके शब्द हों। वह कल कहता था। दस रुपये की लॉटरी अपने को.... कुछ होगा। लॉटरी में दस रुपये भरे होंगे तो साढ़े बारह लाख (आये)। आहाहा! परन्तु उसमें क्या है ? परन्तु अब धूल में क्या हुआ ? साढ़े बारह लाख आये तो उसमें प्रसन्न क्या हुआ ? धूल मिली उसमें प्रसन्न ? और ऐसा माँगे और बेचारे को रोटियाँ मिले नहीं, इसलिए हीन है, ऐसा नहीं है, भाई! बाहर की सम्पदा है (तो) अधिक और हीनता है ऐसा है नहीं। आहाहा! देवचन्दजी! ऐसा आत्मदेव का स्वरूप है, कहते हैं।

सुन्दर शरीरवान हूँ,... सुकोमलता देखो तो एक-एक अंग, एक-एक अंग अच्छा। **यह दीन, रंक मेरी बराबरी नहीं कर सकता।** दाँत गिर गये, एक आँख फूटी हुई हो, नाक यहाँ टूट गयी हो, कान टूट गया हो, बूंटी-बूंटी (हो), यह बेचारा क्या हमारे साथ बैठ सकेगा ? हमारी होड़ में रह सकेगा यह ? परन्तु अब तुझे क्या है ? प्रवीणभाई! तुम्हारे भाई वहाँ बहुत कमाते हैं। दस-दस, बीस-बीस लाख रुपये की पूँजी, बीस-बीस लाख की आमदनी करते हैं। धूल में भी नहीं, अब उसमें है क्या परन्तु ? समझ में आया ? अपना लेंगे वापस, देखो! हमारे कर्म का उदय आवे तो हमारे भी हो जाए, यह तो बाहर की सामग्री है। इसमें आत्मा को क्या ? समझ में आया ? देखो!

यह दीन, रंक मेरी बराबरी नहीं कर सकता। यह हमारे साथ नहीं बैठ सकता, हमारे साथ खड़ा नहीं रह सकता। इतना हमारा पुण्य है, शरीर की सुन्दरता और वाणी की अनुकूलता, कितने ही नौकर, सबकी अनुकूलता है। सेठी! नरेन्द्रभाई जैसा पुत्र। इन्हें तो पुत्र भी नहीं, बांझ, कुछ बोलने का पुण्य का भी ठिकाना नहीं, इसलिए दीन है—ऐसा नहीं है, कहते हैं। बाहर की सामग्री हीन है, इसलिए दोषवाला है और बाह्य सामग्री अधिक है, इसलिए मैं अधिक हूँ, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया ?

देखो! **उलटा ऐसा विचार करता है...** देखो अब! **प्राणियों के कर्मोदय से अनेक विचित्र अवस्थाएँ होती हैं;...** परद्रव्य के कारण से। यहाँ तो स्वद्रव्य को भूलकर बात चलती है न ? विचिकित्सा जो अज्ञानी को होती है वह। परद्रव्य के कारण विचित्र अनेक अवस्था तो होती है, उसमें आत्मा को क्या दोष और अधिकता आयी ? **जब मेरे ऐसे कर्म का उदय आवे, तब मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ...** हो जाए। मैं भी अर्थात् ?

वाणी क्या कर सके ? समझाना होवे तो। आत्मा ऐसा होता है ? परन्तु उसे बाहर की सामग्री ऐसी आती है। उसमें उससे हीनता क्या है और अनुकूलता में अधिकता क्या है ? मगनभाई ! सट्टे में अभी व्यवस्थित है, बड़ा जबरा...

एक बार देखने गये थे। बहुत समय की बात है... क्या तुम्हारा कैसा ? कोलाबा। मुम्बई। मुम्बई, कोलाबा, सट्टा (चलता था)। रुई का बड़ा मारवाड़ी (व्यापारी) शोर पर शोर मचाता था। देखने तो जाए, कहा। वहाँ क्या है ? समुद्र के किनारे है न ? जहाँ तार का बड़ा ऑफिस है, विलायती तार आता है। सब धमाधम उड़ाते हैं। कहा, यह क्या करते हैं ? वह तो मानो... ओहोहो ! दिया, लिया... अमुक-अमुक... यह तो तुम पागल देख लो। होवे, पच्चीस-पचास लाख का आसामी, हों ! बड़ा मारवाड़ी, दिखे साधारण। परन्तु अब क्या है ? धूल है, सुन न ! इससे अधिक क्या हुआ और पुण्य का योग न हो और प्रतिकूलता हो तो उसमें हीनता, आत्मा को क्या दोष आया ? यह वस्तु है। दृष्टि की—यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की व्याख्या चलती है।

धर्मी जहाँ पहले शुरुआत का हुआ, उसकी दृष्टि में बाहर की सामग्री की हीनता और अधिकता नहीं मानता। आहाहा ! **जब मेरे ऐसे कर्म का उदय आवे, तब मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ..** परन्तु मैं भी, ऐसा क्यों कहा ? ऐई ! दिलीप ! आत्मा ऐसा हो जाता है ?

मुमुक्षु : नहीं, आत्मा नहीं होता, परन्तु यह व्यवहार से कथन लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कथन लिया है ? देखो ! व्यवहार से समझाना हो तो किस प्रकार समझाना इसे ? मेरे पास अभी ऐसी सामग्री नहीं है। इसलिए अनुकूलता है। ऐसा कर्म का उदय है। हित की अवस्था भी आ जाए निकट में। ऐसा लिया जाता है। समझाने की भाषा अलग पड़ जाती है। समझ में आया ? उसके कारण हीन हूँ और उसके कारण अधिक हूँ, (ऐसा नहीं है)।

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण से विराजमान पाँच पद का जिसमें-स्वरूप में धाम है। ऐसा भगवान जहाँ मेरे पास है, उसके समक्ष बाहर की कीमत नहीं है। इन्द्र का पद मिले, तो भी अधिक नहीं और कदाचित् कोई पूर्व का आयुष्य नरक में बँध गया और नरक में गया तो भी हीन नहीं। आज आया नहीं था ? भजन में आया था। सम्यक्त्वी

नरक में जाए तो भी (सुखी है) मिथ्यादृष्टि स्वर्ग में जाए तो भी दु:खी है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी यह स्वीकार किया....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित किया ही नहीं। स्वीकार कहाँ किया है? यह तो बाहर की धारणारूप से है। चन्दुभाई! अन्तर में दृष्टि होकर उसरूप हो जाना, उसरूप हो जाना, कब हो जाए?—कि परिणमन हो, तब उसरूप हो जाना। समझ में आया? बात ख्याल में आवे, परन्तु उसरूप हुआ नहीं। इसलिए उसे ऐसा हुए बिना नहीं रहता। ऐसी बात है। गजब मार्ग, भाई!

बस! सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए फिर क्या राजपाट में नहीं होता होगा? रहता ही नहीं, सुन न! उसे राग आवे तो उस राग में नहीं रहा, तो वह राजपाट तो कहीं रह गये। सुन न! भगवान आत्मा अनन्त गुण का धाम, आनन्द की मूर्ति है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, उसमें वह है। राग में नहीं, व्यवहार में नहीं और पर में है नहीं। समझ में आया? तथापि विवाह में दिखायी दे, बोलने में ऐसा बोले यह मेरी घर की मालकिन है, घर का व्यक्ति है, ऐसा बोले, लो! हराम अन्दर घर का व्यक्ति मानता हो तो। अरे.. अरे..! ऐई! हमारे घर के तो आनन्द और शान्ति की प्रजा है। हमारे घर में दूसरा है नहीं। कहो, मलूकचन्दभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब उठ गयी। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम प्रभु है, उस पर दृष्टि हुई, इसलिए सब...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....वह है, ऐसा देखता है। वह है, ऐसा। दूसरा क्या? तू कहाँ वह आत्मा हो गया? और अधिक बढ़ा तो अधिक कहाँ हो गया वह?

यह तीसरा बोल हुआ। नि:शंक, नि:कांक्ष, निर्विचिकित्सा। समकित के आठ गुण, लक्षण, आचरण हैं। उनके तीन की व्याख्या हुई। अरे.. अरे..! यह तो भारी सूक्ष्म है। **ऐसे विचार से निर्विचिकित्सा अंग होता है।** लो, ऐसे विचार के कारण धर्मी को पर की हीनता, दु:ख और ग्लानि नहीं आती अथवा उसे हीन, पामर नहीं देखता। उसकी

प्रभुता का भान सम्यग्दृष्टि को होता है। मुनि हो, लो! और बाहर में साधारण सामग्री आयी हो, तो भी उसे प्रभु देखता है। ओहोहो! धन्य अवतार तुम्हारा! समझ में आया? उस परद्रव्य के सामग्री के संयोग में हीनाधिकपना नहीं मानता। अपने लिये भी नहीं मानता और पर के लिये भी नहीं मानता। आहाहा! यह बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है। देवचन्दजी! आहाहा!

चौथा बोल—अमूढ़दृष्टि। सम्यग्दृष्टि अमूढ़ होता है। किसी भी भाव में मूढ़ नहीं होता। **अतत्त्व में तत्त्वपने का श्रद्धान सो मूढ़दृष्टि है।** अतत्त्व में तत्त्वपना, सत्य नहीं है, उसमें असत्यपना; असत्यपना है, उसमें सत्यपना मानना, वह मूढ़दृष्टि है। **ऐसी मूढ़दृष्टि जिसके न हो सो अमूढ़दृष्टि है।** यह मूढ़पना नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि, वह अमूढ़दृष्टि है। **मिथ्यादृष्टियों द्वारा मिथ्या हेतु...** अब न्याय देते हैं। अज्ञानी के आत्मा को मानने के कोई मिथ्या हेतु हों, छह द्रव्य को उड़ाने के, एक ही द्रव्य को मानने के अथवा आत्मा और पुद्गल दो को मानने के इत्यादि... अथवा पर्यायरहित मानने में, अकेला पर्यायवाला मानने में। ऐसे मिथ्यादृष्टि के मिथ्या हेतु **एवं मिथ्या दृष्टान्त से साधित पदार्थ हैं, वह सम्यग्दृष्टि को प्रीति उत्पन्न नहीं कराते हैं...** किसी अज्ञानी ने एकान्त, वीतराग से कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त कुयुक्ति से सिद्ध करे। यह वेदान्त (कहे ऐसा) देखो! ऐसा ही है। नाम, रूप को... क्या कहते हैं? यह सब नाम रूप है, वस्तु कहाँ है? ऐसा कहे। क्या कहा? तीसरा बोल कहते हैं। नाम, रूप न? अस्ति, भाति और क्रिया है न? है - अस्ति, भाति - ज्ञान, अस्ति, श्रद्धा। ऐसा करके यह सब है। परन्तु वह सब नामरूप है। समझ में न? तीसरा बोल कुछ है। भूल गये। ऐई! क्या नाम है? यह सब नाम रूप है, बाकी वस्तु है नहीं। यह वस्तु तो अकेली चिदानन्दस्वरूप है। ऐसी मिथ्यायुक्ति से सिद्ध करने जाए तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को उससे कुछ शंका नहीं पड़ती। उसमें उलझन में नहीं आता। **प्रीति उत्पन्न नहीं कराते हैं...** ओहोहो! गजब बात कही है इसने, (ऐसी प्रीति नहीं होती)। समझ में आया?

लौकिक रूढि अनेक प्रकार की हैं, वह निःसार हैं, निःसार पुरुषों द्वारा ही उसका आचरण होता है, जो अनिष्ट फल देनेवाली है... यह पीपल में पानी डालने का... क्या कहलाता है वह? श्राद्ध... श्राद्ध...। श्राद्ध डालना और वह सब क्रिया लौकिक

रूढ़ि है, उसमें धूल में भी कुछ नहीं है, कहते हैं और अज्ञानी उसमें ऐसा माने। लोक में प्रचलित हो गया तो उसने माना। हो गया, जाओ। समझ में आया? यह मानते हैं न? कोई व्यन्तरी को कोई व्यन्तर को, कोई बैल को। तुम्हारे है न बैल? बैल नहीं बाहर? देव। उसे भी खबर नहीं। इसने मुझे कहा हुआ। उसे खबर नहीं। वहाँ बाहर नहीं कुछ उसके आसपास कोई बैल? देरी ऐसा है उसका खाता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कहाँ यहाँ काम है? यहाँ है या नहीं कुछ? इतना तुमने कहा। यहाँ मुझे कहाँ खबर ही है। उसे भी याद नहीं। बैल, उसे देवरूप से मानने जाए। बैल है और प्रजा कैसी हो? गाय से यह हो और यह हो।

मुमुक्षु : गाय को माता मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाय को माता मानते हैं। पूँछ में देव मानते हैं। गाय की पूँछ में तैंतीस... कितने कुछ तैंतीस करोड़ कहते हैं? वहाँ देव बसते हैं और गाय माता का पेशाब भी पवित्र है। ऐसी मूढ़ता अज्ञानियों की लोक प्रचलित चली सो चली। सम्यग्दृष्टि उसे नहीं मानता है। समझ में आया? यह सुरधन। नहीं? उसका पिता तीसरी पीढ़ी का था। मरकर यह हुआ। हमेशा बारह महीने मरकर श्राद्ध, यह क्या कहलाता है? पालीताणा। वहाँ ऐसा चलता है। पहले वह बहियों में लिखते। 'हैदरशाह हाजरा-हजूर' मैंने कहा, तुम्हारा बाप कोथलो है? उसे कुछ ठीक नहीं था। तब वे कहाँ गये थे? हैदरशाह। वे मानते हैं, बहियों में लिखते हैं, 'हैदरशाह हाजरा-हजूर'। ऐसे के ऐसे। अज्ञानी की भ्रमणा। अमुक.. अमुक..

कहते हैं, लौकिक रूढ़ि, पहले दूसरी बात की, धर्म की पहले की। कोई कुयुक्ति से पदार्थ सिद्ध करे, एक ही होता है, दूसरा नहीं होता। समझ में आया? जड़ और चेतन दो ही होते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्तिकाय होते ही नहीं। यह सब जैन का कल्पित खड़ा किया है। ऐसा है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? और यह तो लौकिक की बात है। **वह नि:सार हैं,...** लौकिक नि:सार बातें हैं। अम्बाजी को माने तो ऐसा होता है। हैं न तुम्हारे 'कांप' में। वहाँ अम्बाजी का बहुत बड़ा है 'कांप' में। अरे! पागल वह

भी... विसाश्रीमाली और दशाश्रीमाली। लो! विसाश्रीमाली देवी अम्बाजी माने। सिंह के ऊपर चढ़कर आवे। उसका कितना जोर! देखो! परन्तु है क्या? जोर पर चढ़कर आयी उसमें क्या? उसमें देवी को चमत्कार वस्तु कहाँ आयी? अज्ञानी ऐसे लोक रूढ़ि के माननेवाले हैं। ज्ञानी उन्हें नहीं मानता। देव में... इत्यादि विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)